पू. सूरजमलजी वैद

जन्म – वि. सं. १६५२ ★ स्वर्ग – वि. सं. २००६

जिनकी प्रेरणा से
धर्म के दो अक्षरों का बोध हुआ व
जिनेन्द्र भगवंत के प्रति श्रद्धा का
अंकुर हृदय में प्रस्फुटित हुआ
उन्हीं के चरण कमलों में सादर समर्पित

बुधसिंह हीराचद वैद, जयपुर

द्वारा

श्री तपश्चर्या निमित्त श्री उधापन महोत्सव

व

श्री जिनेन्द्र भक्ति निमित्त शान्ति स्नात्र सहित

अष्टाह्निका महोत्सव

पर भेंट

सम्वत् २०२१

प्रस्तावना

मुमुक्षु जीवो का अन्तिम ध्येय जन्म मरण के महान दुःखो का अन्त कर मोक्ष प्राप्त करने का होता है। इस पवित्र उद्देश्य की सिद्धि के लिए अनेक साधनो में विश्व वन्द्य जगत् पूज्य वीतराग देव की निर्विकार शान्त मुद्रा ध्यानावस्थित मूर्ति एक मुख्य साधन है।

भूतकाल में अखिल संसार मूर्तिपूजक था आज भी किसी न किसी प्रकार मूर्ति का सत्कार संसार भर में हो रहा है और भविष्य काल में जब तक सृष्टि का अस्तित्व है तब तक बराबर मूर्ति की सत्ता स्थापित रहने वाली है।

विद्वानों का मत है कि ज्ञानी पुरुष जितना उपकार नहीं कर सकते उससे अधिक अज्ञानी पुरुष अपकार कर सकते हैं क्योंकि संसार में जितनी सत्य युक्तियाँ हैं उन से अनन्तगुणा कुयुक्तियाँ हैं। जहाँ ज्ञानी सुयुक्तियों से काम लेते हैं वहाँ अज्ञानी कुयुक्तियों का प्रयोग कर जीवों को ठगने का प्रयत्न करते हैं और इससे संसार में सम्यग् दृष्टि जीवों से बहकाने अनन्तगुणा मिथ्या दृष्टि है।

बुद्धिवाद के इस युग में मूर्ति पूजा नहीं करने वाले वर्गों की भी उस ओर रुचि हुई है। कारण कि आज मूर्ति बगैर जगत का व्यवहार भी मुश्किल है। स्थापना निक्षेप आज सारे विश्व में व्याप्त है।

एक नये पैसे से बड़े से बड़े नोट का उपयोग चित्रों में छिपाए मूर्तियाँ आईल पेंटिंग फोटो ट्रेडमार्क प्रदर्शन-चलचित्र वगैरह स्थापना निक्षेप हैं। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि मूर्ति से प्रेरणा मिलती है और भावना की अभिवृद्धि होती है।

मूर्ति की प्राचीनता की उपयोगिता को मानकर आज कई आत्माएं मूर्ति की तरफ झुक रही है। इतने पर भी आज के आरम्भ-समारम्भ से घबरा जाने वाले हम लोग मूर्ति पूजा में कांप उठते हैं यह केवल आत्मा के ठगने के समान है। पर गृहस्थों को श्रेय मार्ग पर बढ़ने के लिए वीतराग देव की द्रव्य पूजा आवश्यक है और आत्मोन्नति के सन्मुख जाने का अमोघ उपाय है।

समर्थ शास्त्रकार महर्षि आचार्य श्रीमद् हरिभद्र सूरिजी और उनसे भी पूर्व बड़े महान् महर्षि फरमाते हैं —

चैत्य वन्दनतः सम्यक् शुभाभावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्व, ततः कल्याण मश्नुते ॥

चैत्य अर्थात् श्री जिन मन्दिर अथवा श्री जिन बिम्ब को सम्यक् प्रकार से वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभ भाव उत्पन्न होता है। शुभ भाव से कर्म का क्षय होता और कर्म के क्षय से सब कल्याण की प्राप्ति होती है।

चैत्य वन्दन का ही दूसरा पद है प्रतिमा पूजन। मन, वचन और काया की प्रशस्त प्रवृत्ति का नाम वन्दन है। मन से ध्यान करना वचन से स्तुति करना और काया से पूजनादि करना यह शास्त्रीय रूढ़ि के अनुसार वन्दन क्रिया कहलाती है। वर्तमान युग धर्म के विषय में एक भ्रमणा से बहुत कम विचार करने वाला है। विरले ही मिलते हैं जो धर्म विषय में गहरा उतरने का प्रयास करते हों। ऐसी स्थिति में मिथ्या वादों का जीवन में घुस जाना और सच्ची वस्तुओं का जीवन में से निकल जाना बिल्कुल सरल है। श्री जिन प्रतिमा पूजन एक सर्वोत्तम धर्मानुष्ठान है। इसकी कोटि का दूसरा धर्मानुष्ठान तीन लोक में भी मिलना कठिन है।

जगत का व्यवहार केवल मात्र मूर्ति से चल रहा है। मूर्ति यानी मूक उपदेशक। एक चित्र सिपाही के सामने खड़ा किया जाता है। उसके बख्तर लगा हुआ है, कमर पर पट्टा बंधा हुआ है, हाथ में भाला है। यह

चित्र किस का हो सकता है? प्रताप का या शिवाजी का? जो उनका चरित्र नहीं जानता वह भी कह सकता है कि यह कोई बहादुर आदमी का चित्र कि जो मैदाने जग मे उतरा होगा। इसी प्रकार हाड व पसलियां दिखती हो ऐसे त्यागी साधु का चित्र सामने किया जावे तो कोई यह नही कहेगा कि यह चित्र किसी योद्धा का हो सकता है। किन्तु वह यही कहेगा कि यह किसी त्यागी महात्मा का चित्र है।

दुनिया में रहे हुए पर्वत, नदियां गाव शहर व समुद्र आदि परोक्ष वस्तुओं का ज्ञान करना हो तो नक्शा (Map) की जरूरत पड़ती है। तो फिर भूतकाल में हो गये महापुरुषों के सत्य स्वरूप का ज्ञान करने के लिए नक्शे के जैसे मूर्ति की खास जरूरत रहती है।

सुश्रावक श्री हीराचद बद ने इस पुस्तक को लिखने में खूब मेहनत की है। समाज के हरेक कार्य में सुन्दर योग दे रहे हैं। साधु मुनिराज के चातुर्मास के लिए विनती करने परिश्रम करने म अग्रसर रहत है व लाभ उठात हैं। साथ ही धार्मिक विषयो मे इनकी धर्मपत्नि व इनके पिताश्री माताश्री व सारा ही परिवार काफी रुचि रखते हैं। इनके परिवार मे ज्ञानपचमी–चतुर्दशी आदि की आराधना सम्पूर्ण होने पर उसके निमित्त उद्यापन कराने का विचार किया है व इस अवसर पर पूजा के सम्बन्ध म नोधखोज पूर्ण ढग से आज की नयी पीढ़ी को ग्राह्य हो इस प्रकार पुस्तक लिखी है वह भी प्रकाशित कर रहे हैं यह अनुमोदनीय है।

पुस्तक का वाचन, मनन करके सब लोग लाभ उठावें यही भावना भाते हैं।

कार्तिक सुद १४ स २०२१
उदयपुर

मुनि जिनप्रभ-विजय

पुस्तक के सम्बन्ध में

भारत के सब ही दर्शनों में भक्ति रस को अच्छा स्थान प्राप्त हुआ है। भक्ति के मार्ग चाहें थोड़े-थोड़े भिन्न हो पर सब का लक्ष्य यही है कि मानव भव की प्राप्ति के साथ जो ज्ञान इस जीव को मिला है उसका उपयोग कर अपनी आत्मा का कल्याण जितना भी अधिक से अधिक हो सके किया जाय।

जैन शासन में तीर्थंकर देवों ने चार श्रेणियां कायम की हैं। प्रथम साधु द्वितीय साध्वी तृतीय श्रावक और चतुर्थ श्राविका—प्रथम दो श्रेणी के जीव सर्व विरती धर्म वाला सब प्रकार की हिंसा से दूर रहकर पंच महाव्रत के पालक होते हैं। वे भक्ति हेतु केवल भाव पूजा के अधिकारी बतलाये गये हैं ताकि सूक्ष्म हिंसा दोष से भी वे बचे रहें। तीसरी और चौथी श्रेणी के जीव देश विरती धर्म या स्थूल हिंसा के त्यागी होते हैं। उनके लिए बारह व्रत का विधान बताया है उनके लिये द्रव्य व भाव पूजा दोनों का ही अधिकार है।

आज के युग में जिस तरह की शिक्षा का प्रचार हो रहा है उससे विश्व अध्यात्मवाद से दूर हटते हुए भौतिकवाद की ओर बढ़ता जा रहा है जिसका परिणाम धर्म के प्रति अल्प रुचि होती जा रही है, जब किसी चीज के प्रति अल्प रुचि रह जाती है तब यहां स्वाभाविक रूप से श्रद्धा की कमी आती है और श्रद्धा की कमी होने से आत्म विश्वास की कमी आती है और आत्म विश्वास की कमी संदेह का वातावरण पैदा करती ही है। आज धर्म के सम्बन्ध में अधिकतर यही दशा देखी जा रही है। जहां दूसरी सब ओर हमारी रुचि और खोज की वृद्धि बढ़ती जा रही है वहां धार्मिक मामलों में उदासीनता बढ़ती जा रही है बल्कि यों कहें कि तर्क कुतर्क करने की भावना भी बढ़ती जा रही है। मेरा आशय यह नहीं कि हम अन्ध श्रद्धालु बने पर जितनी बुद्धि हम दूसरे विषयों में लगाते हैं उतनी यदि धर्म क्षेत्र में लगा पायें तो इस क्षेत्र में भी हमारा विश्वास पुष्ट होते देर नहीं लगे। धर्म के क्षेत्र में विश्वास कम होने से यह स्वाभा

विक है कि उसकी प्रवृत्तियों में भी श्रद्धा कम होता जावे। आज प्रभु भक्ति में भी स्पष्ट ऐसा दिखाई दे रहा है। इस कमी को पूरा करने के लिए हमारे ज्ञानी लेखकों ने काफी साहित्य लिखा है पर हमारा धार्मिक क्षेत्र गुजरात, काठियावाड़ अधिक होने से ज्यादातर साहित्य गुजराती भाषा में लिखा गया है उसका असर उस भाषा के जानकारों पर हुआ है। साहित्य की छाप जन मानस पर पड़े बगैर रह नहीं सकती, वह गुजरात और काठियावाड़ में स्पष्ट देखी जा सकती है। धार्मिक क्रियाओं का बोध और उसमें जागरूकता दूसरी जगह के मुकाबले वहां ज्यादा ही मिलेगी और उसका परिणाम भी स्पष्ट है कि वहां का समाज दूसरी जगह के मुकाबले समृद्ध सुखी दिखाई देगा।

हिन्दी साहित्य में भी इस सम्बन्ध में कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। पर आज की शिक्षा पाये विद्यार्थियों एवं जानकारों को पुरानी पद्धति से समझाना थोड़ा मुश्किल है। आज के बुद्धिवादी युग में तर्क और वैज्ञानिक ढंग से कोई चीज न परोसी जावे तब तक वह आसानी से ग्रहण होती नहीं। आज तो प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। इसी विचार को ध्यान में रखकर एक छोटी सी पुस्तिका लिखने का विचार काफी दिनों से था। पर इस क्षेत्र में योग्यता का अभाव सदैव खटकता था। सं० २००८ में इधर पूज्य आचार्यदेव १००८ श्री विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज सा० का पधारना। उनके केवल ६ या ७ व्याख्यानों ने हृदय में प्रभु भक्ति के प्रति एक दृढ़ता का वातावरण बना दिया। धीरे धीरे उसको पुष्टि मिलती गई। सं० २०१७ में आचार्यदेव श्री विजयसमुद्र सूरीश्वरजी म० एवं गणिवर्य जनक विजयजी म० सा० के जयपुर के व्याख्यानों ने धार्मिक भावना को दृढ़ किया। सं० २००८ में जैनाचार्य विजय हिमाचल सूरीश्वरजी म० आज्ञानुवर्तिनी साध्वीजी म० जिनश्रीजी का चातुर्मास जयपुर में हुआ। उनके भाषणों से फिर इस प्रकार प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने इस हेतु गुजराती में कुछ नाम भी दिये। सं० ... का चातुर्मास यहां उत्कृष्ट चारित्र आराधक मुनि श्री जिनप्रभ विजयजी म० का हुआ। उनके सामने

जब यह विचार रखा तो इतनी पुष्टि मिली कि योग्यता अयोग्यता का ध्यान एक ओर रखकर केवल विश्वास और श्रद्धा ने इतना साहस दिया कि इस सम्बन्ध में कुछ लिखूं । आज मूर्ति पूजा के प्रति नयी पीढ़ी में उपेक्षा का जो भाव बन रहा है उसके कारण दिल में चोट पहुंचना स्वाभाविक था। अतः आज के वैज्ञानिक ढंग से इस विषय पर एक छोटा सा निबंध लिख डाला, जिसमें प्रमुखतौर से यही विचार किया गया है कि धर्म में पूजा का क्या स्थान है। पूजा किस की करनी चाहिए? क्यों करनी चाहिए? कैसे करनी चाहिए? और उसमें लाभ क्या है? साथ ही मूर्ति पूजा के प्रति जो असद्भाव आज दिखाई देता है उस सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक प्रमाण, कुछ दलीलें व कुछ समझने-समझाने के दृष्टि कोण से विचार किया है।

मैं पहले ही अर्ज कर चुका हूं कि इस पुस्तक को लेखक की योग्यता अयोग्यता पर न मापा जावे बल्कि भावों पर ही अधिक विचार किया जावे। इतने पर भी अज्ञानतावश कोई लेखन उचित न हुआ हो तो तस्स मिच्छामिदुक्कडम्।

इस छोटी सी किताब में कहीं भी प्रकरण कोई भी विचार किसी के दिल दुखाने या खण्डन मण्डन की दृष्टि से नहीं लिखा गया है। जैसा ज्ञानीजनों से सुना है या अपनी बुद्धि पर समझने का प्रयत्न किया है उसीका यह संकलन है। पुस्तक के लेखन में जिन जिन लेखक महोदयों की कृतियों का सहारा लिया है उन सब के प्रति हार्दिक कृतज्ञता जाहिर करता हूं।

इस पुस्तक के लिए दो शब्द लिखकर पूज्य गुरुदेव श्री जिनप्रभ विजयजी म. सा. ने जो प्रेम प्रदर्शित किया है उसके लिए मैं उनका अत्यधिक उपकृत हूं। आशा है इस पुस्तक के पढ़ने से जिनेश्वर देव के प्रति श्रद्धा दृढ़ होगी। बस इसी में मेरा पुरुषार्थ सफल समझूंगा।

जोरावर भवन,
जौहरी बाजार, जयपुर (राज)
कार्तिक ५ ज्ञान पंचमी सं. २०२१

हीराचंद बैद

प्रकाशकीय हेतु

मेरे पूज्य पिताजी स्व० श्री सूरजमलजी वेद ने अपने जीवन में प्रभु भक्ति के लिए कुछ प्राप्त किया था वह आत्मा में पीछे हम सब लोगों को प्राप्त हुआ अपने जीवन के अन्त समय तक वे नवकार मन्त्र के स्मरण एवं अरिहंत के ध्यान में लीन रहे। धार्मिक क्षेत्र में नित्य पूजन, सामायिक, व्याख्यान श्रवण एवं तपश्चर्या आदि में तो रत रहते ही थे साथ ही सामाजिक क्षेत्र में भी उनकी रुचि कम न थी। जयपुर के जैन श्वेताम्बर समाज का बरतन भंडार उन्हीं की सूझ बूझ का परिणाम है एवं उसको इतना मजबूत बनाने में उनका प्रमुख हाथ रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे यद्यपि स्वयं बहुश्रुत नहीं थे, पर उनकी इस ओर अत्यधिक रुचि के कारण तत्कालिन राज्य सरकार की शिक्षा सलाहकार समिति में जनता की ओर से वे भी एक सदस्य थे। जहां हिसाब किताब के वे अच्छे जानकार थे, वहां संगीत क्षेत्र में भी प्रभु भक्ति के गायनों को काफी सुन्दर गाते थे।

उनके जीवन के अन्तिम क्षणों में उनसे प्रेरणा पाकर मेरी धर्मपत्नी, एवं पुत्र हीराचन्द वैद एवं उसकी धर्मपत्नि ने सं २००६ में चतुर्दशी के व्रत (उपवास) का प्रारम्भ किया। उसके बाद मेरी भी नवपद ओली शान्त से पूरण हुई। सं २०१० में मुनि श्री वल्लभदत्त विजयजी की प्रेरणा से पारस दासी का एकासना व्रत, सं २०१९ में गणिवर्य धर्मसागरजी म. सा. की प्रेरणा से अष्टमी के प्रायश्चित की तपस्या सं २०१५ मुनि श्री भगवान् विजयजी की प्रेरणा से ज्ञान पंचमी तप हीराचन्द और उसकी धर्मपत्नि ने प्रारम्भ किया। सं २०१८ में पूज्य साध्वीजी म. श्री जिनेन्द्र श्रीजी की प्रेरणा से मैंने व हीराचन्द की धर्मपत्नि ने दोज का

व्रत प्रारम्भ किया । इसी बीच हीराचन्द की धर्मपत्नि के नवपद की ओली भी पूर्ण हुई । इन सब तपस्याओं के सानन्द पूर्ण होने पर उद्यापन कराने की भावना गत वर्ष पूज्य श्री जिनप्रभ विजयजी महाराज सा० के चातुर्मास में जागृत हुई पर मारवाड में उपधान होने से वे इधर नहीं विराज सके ।

सौभाग्य से इस वर्ष यहां पूज्य श्री गणिवर्य दर्शन सागरजी महाराज सा० ठाणा ४ व पूज्य साध्वीजी म० विद्या श्रीजी, बसन्त श्री का चातुर्मास यहां सम्पन्न हुआ । अब उन्हीं की निश्रा में इन तपस्याओं पर क्रमश आरोहण रूप यह उद्यापन महोत्सव एवं शान्तिस्नात्र सहित अष्टाह्निका महोत्सव सम्पन्न हो रहा है ।

इस अवसर पर चि० हीराचन्द द्वारा लिखी गई यह पुस्तक भी हम प्रकाशित कर रहे हैं । अवश्य ही यह जिनेश्वर भगवंत के प्रति श्रद्धा पुष्ट करने में आज के युग में सहायक रूप सिद्ध होगी ।

जोरावर भवन, जौहरी बाजार, जयपुर सं० २०२१	}	भवदीय बुद्धसिंह वैद

आज के युग मे धर्म शब्द का भिन्न २ रुचि वाले भिन्न २ अर्थ करते हैं। कोई तो धर्म का अर्थ कर्तव्य (Duty) से करते है। पर कोई कहते हैं धर्म का अर्थ भिन्न २ जगह भिन्न २ होता है। जैसे पति के प्रति पत्नि का धर्म अलग गुरु के प्रति शिष्य का धर्म अलग शिक्षक के प्रति विद्यार्थी का धर्म अलग पर धर्म तत्व तो दूसरी ही वस्तु है। कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज ने बहुत सुन्दर शब्दों में केवल एक श्लोक में धर्म तत्व का विवेचन किया है –

> दुर्गति प्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते ।
> संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥

अर्थात्—दुर्गति में जाते हुये प्राणी को जो बचावे उसका नाम धर्म है, और मुक्ति प्राप्त हेतु सर्वज्ञ भगवान् ने इस धर्म के दस प्रकार बताये हैं वे हैं क्षमा नम्रता सरलता निर्लोभता तप संयम, सत्य, शौच अभ्यन्तर पवित्रता और अल्पपरिग्रहता।

दशवैकालिक सूत्र में भी कहा है धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।

अर्थात्—अहिंसा संयम और तप ही उत्कृष्ट धर्म हैं।

पर ये सर्वज्ञ कथित सिद्धान्त हमारे जीवन में आवें इसके लिये यह आवश्यक है कि इन सिद्धान्तों के देशनाओं के वक्ता के प्रति हमारी श्रद्धा हो उनके प्रति हम में विनय हो उनकी सेवा भक्ति का हमारे दिल में दृढ़ निश्चय हो।

आज की शिक्षा का प्रकार कुछ ऐसा बन गया है कि नई पीढ़ी में से धर्म नाम की वस्तु निकलती जा रही है अपने परम उपकारी सर्वज्ञ देवों के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा नहीं जो भक्ति का रूप कहीं कहीं दृष्टिगोचर होता है उसमें भी स्वार्थ की भावना अधिक है, कुछ कामना हेतु कुछ

व्यवहार हेतु धम करणा हानी जरूर है। पर वह साहित्य उतनी फलदायी होती नही। इसम कभी-कभी ऐसा भा बन जाता है कि इस प्रकार की श्रद्धाहीन क्रिया धम स हमको और पाप खाच लती है।

पर शांति और गम्भीरता स सोचें और मनन करें तो हम निष्कर्ष पर आना पड़ेगा कि यह मनुष्य योनि और योनियों स कुछ विशिष्टता रखती है। चार गतियां म नरक गति पराधीनता वाली है यहां आप का सोचा आप कुछ करने में समर्थ नहीं हैं वहां देवगुरु की सामग्री भी उपलब्ध नहीं है। दूसरी तियचगति है इस गति में विवेक रहता नहीं विवेक और ज्ञान का भान नहीं होने स धम करणी की जा सकती नहीं। तीसरी देव योनि है देव हमेशा विषयासक्त रहते हैं और व्रत पच्चक्खाण भी उनके उदय में आ सकते नही है। अब चौथी गति रहती है मनुष्य की इस गति म उम सब साधन प्राप्त होते हैं। वह धम की आराधना कर सकता है अपन पूव संचित पाप कर्मों का क्षय भी कर सकता है और पुण्य कर्मों का नये रूप स सचित भी कर सकता है व कम की निजरा भी कर सकता है। पर यह सब सम्भव हो सकता है ज्ञान से। हमारे पूर्वाचार्यों ने इस सम्बन्ध में अनेकानेक ग्रथा की रचना की है और उसम अनेक विषयो पर खुल कर प्रकाश डाला है। दूसरे विषयों पर विचार करने स पूर्व हमें सर्व प्रथम यही जानना और समझना ज्यादा ठीक लगता है कि हम अपने उपकारी क प्रति कृतज्ञता कैसे जाहिर करें। यह जान लने मे स्वत ही हममें उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी और वह सच्ची श्रद्धा ही हमें भव-भव स तारने वाली साबित होगी।

पूज्य वीर विजय जी म सा ने पाठ से शब्दों म कितना सुन्दर भाव दर्शाया है —

दुसम काल जिन बिम्ब जिनागम भविजन को आधारा जिन बिम्ब और जिनागम ये दो वस्तुएं ही इस विषम काल मे ससार क प्राणियों के लिये भव सागर से तरने के लिय आधारभूत हैं।

अब हम इस पुस्तक में प्रभु पूजा क्यों और कैसे, विषय पर ही सबका ध्यान आकर्षित करेंगे।

इस प्रश्न पर विचार करते ही हमारा ध्यान सब प्रथम एक ओर जाता है कि पूजा किसकी?

जगत में बहुत से देव पूजे जाते हैं। पर एक देव नामक शब्द से सम्बोधित होने वाले सब ही समान हों यह सम्भव नहीं हमें केवल नाम पर नहीं जाना है हमें तो गुण को और देखना है जैसे गाय का दूध भैंस का दूध थोर का दूध आकडे का दूध ये सब दूध कहे जाते हैं सब सफेद भी है पर गुण इनके भिन्न भिन्न होते हैं। इसी तरह कपड़ा मात्र कह देने से काम नहीं चलता सूती कपड़ा रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा सब कपड़ा होते हुये भी कीमत में भिन्न भिन्न होते हैं।

यह एक सामान्य नियम है कि जिसको जैसा बनना होता है उसको उसी तरह के व्यक्ति की सेवा करना जरूरी होता है जौहरी बनने के लिये जोहरी की सेवा करना आवश्यक है इसलिये आत्मा को परमात्मा बनाने की भावना रखने वाले व्यक्ति को परमात्मा की सेवा करना जरूरी है। केवल परमात्मा, ईश्वर, प्रभु या भगवान नाम धराने से ही सच्चे परमात्मा की पहिचान नहीं हो सकती। जैसा शास्त्रों में बताया गया है अट्ठार दोष से मुक्त होने वाला व्यक्ति ही हमारे लिये परमात्मा बन सकता है। कारण जो स्वयं दोष मुक्त होगा वह दूसरे को भी दोष मुक्त होने में सहायक हो सकता। बंधन में रहा हुआ व्यक्ति दूसरे के बंधन तोड़ने में कैसे सहायक हो सकता है और जो स्वयं दोषों से मुक्त नहीं वह परमात्मा हो सकता नहीं।

जैन शास्त्रों में परमेश्वर किसे माने इसके सम्बन्ध में बताया है कि उनमें विशेषतः निम्न योग्यताएं होनी चाहिये। जो सामान्य जनता की तरह कौतूहल न करे जिनको सुख पर प्रीति और दुःख पर अप्रीति न होवे जिनको किसी तरह का भय न होवे दुर्गंध युक्त पदार्थ पर जिनको

घृणा न होवे जो सदा जागृत रहते हों, सच को झूठ और झूठ को सच मानने की प्रवृति जिनमें न होवे, मोह व तृष्णा के पापों को जिन्होंने प्रतिज्ञा द्वारा रोक दिया हो, जो विषय विकार से सर्वथा दूर हो, जो पूर्ण सर्वज्ञ हो जगत के सब जीवों पर जिनकी सम दृष्टि होवे दानान्तराय लाभान्तराय भोगान्तराय उपभोगान्तराय एवं वीर्यान्तराय को जिन्होंने क्षय कर दिया हो ऐसे प्रकार दोष रहित कोई भी व्यक्ति हो वे हमारे लिये मान्य एवं पूज्य हैं।

एक सूत्रकार ने इस तरह के देव की बहुत सुन्दर व्याख्या की है -

प्रशमरस निमग्न दृष्टि युग्म प्रसन्न
वदन कमलमङ्क कामिनी सङ्ग शून्य
कर युगमपि यत्त शास्त्र सम्बन्ध बन्ध्य
तदसि जगति देवो, वीतराग स्त्वमेव

अर्थात्—हेभगवान। प्रशान्त रस में निमग्न आपके दोनों नेत्रों से प्रसन्न आपका मुख कमल है आपका शरीर स्त्री संग रहित है आपके दोनों हाथ शास्त्र वगैरह हैं इतने पर भी आप जगत में वीतराग देव तरीके गिने जाते हैं।

इसी तरह सूत्रकार ने एक श्लोक और लिखा है कि कौन से देव हमारे लिए आराध्य नहीं हैं।

स्त्री संग काम माचष्टे द्वेष मायुध संग्रह
जपमालाऽसवज्ञत्व, अशौच च कमण्डलु

अर्थात्—स्त्री का संसर्ग काम का अभिलाषा जाहिर करता है जिनके हाथ में शस्त्र का संग्रह है वह द्वेष का द्योतक है। जिनके हाथ में माला है वह असर्वज्ञता का प्रतीक है और हाथ में रक्खा हुआ कमण्डल अपवित्रता का कारणभूत है।

अतः यह सिद्ध हुआ कि राग द्वेष अज्ञान और मोह से युक्त व्यक्ति परमात्मा हो नहीं सकते कारण वे तो अपने समान ही हुए।

तो हमें परमात्मा बनने के लिए परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को समझ कर ही पूजा सेवा करनी चाहिए। हरेक आत्मा जैन शासन के नियमानुसार परमात्मा बन सकता है। 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा ही तो परमात्मा है सिर्फ बीच में कर्म का पर्दा है उसे हटाना है और उसके लिए प्रभु के सच्चे स्वरूप को पहिचान कर प्रभु भक्ति में तत्पर होना ही एकमात्र साधन है।

प्रभु कौन यह तो हमने समझ लिया पर उनकी पूजा की आवश्यकता क्या व पूजा की महत्ता क्या यह प्रश्न अब सामने आता है। जैसे समुद्र या नदी से पार होने के लिए कोई स्टीमर या जहाज व नौका आदि की आवश्यकता है वैसे ही ससार सागर से पार होने के लिए किसी (आलम्बन) साधन की आवश्यकता जरूर होती है। इसके लिए दो ही साधन हैं एक वीतराग देव की प्रतिमा दूसरे उनके द्वारा भाषित आगम शास्त्र। हमारे पूर्वाचार्यों व पूर्वजों की महान कृपा से आज हजारों लाखों वर्षों बाद भी ये दोनों साधन हमें उपलब्ध हैं इनको कायम रखने में उनका बहुत बड़ा प्रयत्न रहा है। पर हमारा दुर्भाग्य ही मानें कि आत्म कल्याण हेतु इन दोनों साधनों का जितना लाभ हमें लेना चाहिए उसका शतांश भी हम प्राप्त नहीं कर रहे हैं।

आगमों में प्रतिपादित ज्ञान को जानने से हमें पाप पुण्य का भान हो जाता है जीव अजीव का भेद, समस्त लोक व जगत के दूसरे पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। 'ज्ञान बिना पशु सारिखा' कहावत मुजब ज्ञान की कितनी महत्ता है यह किसी से छिपी नहीं, पर इतना जानते हुए भी आज के युग में सीमित बुद्धि होने से सामान्य व्यक्ति ज्ञान के उस स्वरूप को जान नहीं पाते। ऐसी स्थिति में मात्र वीतराग देव की मूर्ति द्वारा ही ज्ञानी अज्ञानी बाल वृद्ध रोगी, निरोगी सब कोई एक समान लाभ उठाकर आत्म कल्याण कर भाग्यशाली बन सकते हैं।

तीर्थंकर देवों की गैर मौजूदगी में आज सौभाग्य से अपने को उनकी समता रस दर्शावती, राग-द्वेष से मुक्त तथा उनके अनन्त एवं वीतरागत्व के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराने वाली दिव्य मूर्ति के दर्शन पूजन व वंदन करने का सुनहरी अवसर प्राप्त हुआ है ऐसा अवसर आत्मा को अनन्त काल व अनन्त भवों के बाद मुश्किल से ही प्राप्त होता है।

राजा महाराजा हमारी सेवा व भक्ति से प्रसन्न होकर कभी एक-दो गांव दे सकते हैं पर स्वयं का पूरा राज्य व राजगद्दी हमें देते नहीं। पारसमणि के संसर्ग से लोहा सोना बन जाता है परन्तु वह पारसमणि बन सकता नहीं। पर वीतराग देव की पूजा-सेवा तो अपने को उनके समान ही बना देती है महाराजा श्रेणिक ने महावीर प्रभु की सेवा से महावीर के समान ही तीर्थंकर गोत्र बंधन किया है और उससे वे महावीर के समान ही ऋद्धि सिद्धि और पदवी प्राप्त करेंगे। श्री कृष्ण ने तीर्थंकर श्री नेमीनाथ भगवान की सेवाकर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया व तीर्थंकर बनेंगे।

जैन शासन का यह एक अभूतपूर्व सिद्धान्त है कि परमात्मा में और उसको मानने व आराधना करने वाले व्यक्ति में कोई फर्क नहीं। परमात्मा की साधना से कर्म का आवरण हटाकर वह स्वयं परमात्मा बन सकता है। और किसी भी दर्शन में यह सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं है। करोड़ों साधु व आराधक जिनेश्वर देव की सच्ची भक्ति करके परम पद को प्राप्त हुए हैं। हमारे यहां एक ईश्वर नहीं है हरेक में ईश्वरत्व अंश विद्यमान है। ठीक इसी सिद्धांत का प्रतिपादन हमारे राष्ट्र के विधान में किया गया है कि यहां कोई एक राजा नहीं है बल्कि इस प्रजातन्त्र में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति राजा है। अब यह उसका फर्ज है कि वह अपने अधिकार को पहिचान और सही रूप में उसका प्रयोग करें।

एक कवि ने कहा है—

> दर्शनात् दुरित ध्वंसी ? वंदनात् वाञ्छित प्रद ।
> पूजनात् पूरक श्रीणाण जिन साक्षात् सुरद्रुम ।'

अर्थात्–जिनेश्वर देव का दर्शन पाप का नाश करने वाला है उनका वंदन इच्छित पदार्थों को देने वाला है। उनकी पूजा और भक्ति लक्ष्मी को देने वाली है, अर्थात् जिनेश्वर देव साक्षात् कल्प वृक्ष हैं।

वीतराग देव की भक्ति करने वाले अगले भव में सर्व मान्य व पूज्य बनते हैं। इससे हरेक व्यक्ति को दर्शन पूजन करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

पर वस्तु और विचारने का है कि तप जप व्रत पच्चक्खाण आदि में तो मनुष्य को अपनी इन्द्रियों पर काबू करना पड़ता है, अपने बल, वीर्य पराक्रम का उपयोग करना पड़ता है एवं सामान्य तकलीफ भी उठानी पड़ती है पर प्रभु पूजा व दर्शन में तो कोई तरह की तकलीफ भी उठानी नहीं पड़ती। इतना होते हुए भी कितने ही हमारे प्रमादी व अज्ञानी भाई बहिन बिना किसी कष्ट के पूजा में होने वाले पुण्य से नाहक वंचित रहते हैं।

दुनियां में ऐसा कोई व्यापार नहीं है कि जिसका व्यापार करने की इच्छामात्र से मनुष्य धन आदि का लाभ प्राप्त कर सके। व्यापार से पैसा कमाने के लिये अनेक तरह की तकलीफ उठानी पड़ती है इतना होने पर उस व्यापार में इच्छित लाभ प्राप्त होवे ही यह जरूरी नहीं है। पर धर्म का व्यापार करने की इच्छा मात्र से पुण्य धन प्राप्त होता ही है।

वीतराग देव के दर्शन की बात तो दूर पर मंदिर में जाने की मात्र भावना में कितना फल मिलता है, इसके समर्थन में पू० विनय विजयजी महाराज सा० ने कितना सुन्दर विवेचन किया है वह मनन करने योग्य है —

प्रणमीश्री गुरुराज आज, जिन मंदिर केरा,
पुण्य भणी करशुं सफल जिन वचन भलेरो ॥१॥
देहरे जावा मन करे चोथ तणुं फल पावे,
जिन जुहारवा उठता, छट्ठ पोते आवे ॥२॥

जइणु जिनवर भणाये, माग चालता,
हावे द्वादश तणु पुण्य, भक्ति मालता ॥३॥
अर्ध पथ जिनवर तणो य पर्दर उपवास,
दीठा स्वामी तणो भवन, लहीये एके मास ॥४॥
जिनवर पासे आवता छ मासी फल सिद्ध,
आव्या जिनवर बारणे, वर्षी तप फल लीध ॥५॥
सो वर्ष उपवास पुण्य जे प्रदक्षिणा देता,
सहस्र वर्ष उपवास पुण्य जो नजरे जोता ॥६॥
फल घणो फूलनी माल प्रभु कंठे ठवता
पार न आवे गीत नाद केरो फल थुणता ॥७॥
शिरपूजी पूजा करीये सूर धूप तणा धूप,
अक्षत सार ते अक्षय सुख दीप तनु रूप ॥८॥
निमल तन मने करीये, थुणता इन्द्र जगीश,
नाटक भावना भावता पावे पदवी जगीश ॥९॥
जिनवर भक्ति वहीये प्रेमे प्रकाशी
सुणी श्री गुरु वयणसार, पूर्व ऋषि भाषी ॥१०॥
अष्ट कर्म न टालवा जिन मन्दिर जइणु,
भेटी चरण भगवत ना हुवे निमल थईणु ॥११॥
कीर्ति विजय उवझाय नो विनय करे कर जोड
सफल होजो मुज विनती, जिन सेवानु कोड ॥१२॥

उपरोक्त स्तव वर्णन में दर्शन वन्दन व पूजन तथा स्तवना से कितना विशाल फल प्राप्त होता है यह सहज ही में जाना जा सकता है।

श्री रायपसेणी सूत्र में भाषित—जिन पडिमा जिन सारिखी के आधार मुजब जिनेश्वर देव की मूर्ति को साक्षात जिन मानकर सदा भक्ति करना चाहिए।

एक वस्तु और ध्यान रखने की है कि मन्दिर में आने वाला व्यक्ति मन्दिर के रहने के समय में दान, शील तप व भावना से चारों धर्मों की आराधना का भागीदार तो बन ही जाता है साथ ही प्रभु दर्शन पूजन के समय भगवान में रह हुये अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आदि व्रतों की अनुमोदना का लाभ भी प्राप्त करता ही है।

प्रभु की भक्ति मोक्ष प्राप्ति हेतु की जाती है, साथ ही उससे दुनिया के पौद्गलिक सुख भी अपने आप प्राप्त हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे गेहूं पैदा करने वाले किसान को गेहूं के साथ साथ अपने आप घास भी मिल जाता है।

हम इस निर्णय पर आये कि प्रभु पूजा की मानव भव में मोक्ष प्राप्ति हेतु सर्वाधिक आवश्यकता है और उसकी हम जीवन में अत्यधिक महत्ता भी है। तो हम वीतराग देव की पूजा में मोक्ष के सिवाय और कोई कामना नहीं रखते हुए अपना तन, मन, धन अर्पित कर स्वयं वीतराग बनने को तैयार होना है।

अब हमें थोड़ा अपने पूर्व इतिहास की ओर ध्यान देना है कि प्रभु भक्ति निमित्त प्रभु (मूर्ति) पूजा से दुनिया का कोई धर्म अछूता रहा नहीं है। मुहम्मद साहब के पूर्व तो सारे विश्व में सब धर्मावलम्बी अपने २ देवी-देवताओं की मूर्ति पूजते थे। मुहम्मद साहब ने सर्व प्रथम मूर्ति पूजा का विरोध किया पर वह उनके अपने देश में ही अपनी विचार धारा का प्रचार कर पाये। विक्रम की चौदहवी शताब्दी तक यूरोप आदि में भी पूरी तरह मूर्ति पूजा का प्रचार था। चौदहवी शताब्दी के बाद जैसे-जैसे मुगलों का प्रभाव भारत भूमि पर बढ़ने लगा वैसे २ कुछ तलवार के जोर से, कुछ प्रचार से धीरे २ मूर्ति पूजा का विरोध बढ़ने लगा। मंदिर जो भारतीय संस्कृति और कला के सुन्दर प्रतीक थे तोड़े जाने लगे। मन्दिरों की सम्पत्ति को लूटा जाने लगा। इतिहास बताता है कि वि. स. १२६६ में जैन शासन की अभूतपूर्व समृद्धि के प्रतीक शत्रुंजय तीर्थ के

गगनचुम्बी मंदिरों को यवनों ने अत्यधिक क्षति पहुँचाई। यहां तक कि तसह-नहस भी कर दिया पर इतने पर भी प्रभु भक्तों की भावना कमजोर न हुई बल्कि यों कहें कि जैसे २ मूर्ति पूजा का विरोध बढ़ने लगा वैसे २ ही मूर्ति पूजा का विश्वास भी बढ़ता रहा व श्रद्धा भी बढ़ती गई। ठीक दो वर्ष बाद वि सं १३७१ मे श्री समरसिंह ने करोड़ों रुपयों का द्रव्य व्यय कर शत्रुंजय पर्वत को फिर से सुन्दर स्वर्ग समान मंदिरों से विभूषित कर दिया। यह मूर्ति पूजा में प्रति अटूट श्रद्धा का जीता जागता ऐतिहासिक प्रमाण है।

मूर्ति पूजा की पुष्टि में काफी साहित्य बाहर पड़ चुका है इसलिए विशेष रूप से लिखने की आवश्यकता नहीं है पर विषय की पुष्टि के लिए कुछ संक्षिप्त रूप में विचार कर लेना ठीक ही होगा। मूर्ति प्राचीन काल से थी और कोई धर्म इससे बच नहीं सका यहां तक कि मूर्ति पूजा का विरोध करते टिकने वाले धर्म भी मूर्ति पूजा से बच नहीं सके इसके सम्बन्ध में कुछ उदाहरण नीचे लिख रहा हूं। इन उदाहरणों में शास्त्रों के मंथन में ज्यादा न जाकर पुरातत्व सम्बन्धी शोध खोज सामग्री को ही प्रमुख स्थान दे रहा हूं —

१ स्थंभन पारवनाथ तीर्थ की प्रतिमाओं के लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नेमिनाथ भगवान के २२२२ वर्ष बाद गौड़देश के आषाढ़ श्रावक ने इस प्रतिमा की स्थापना की।

२ प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास द्वितीय भाग में जो प्राचीन सिक्कों के चित्र दिखाये गये हैं उनमें मौर्यकालीन सिक्का में चैत्य (मन्दिर) के दृश्य अंकित हैं।

३ मोहनजोदड़ो में खुदाई सामग्री में जो जैन प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं उनका काल ऐतिहासज्ञों द्वारा कम से कम ५ हजार वर्ष पुराना बताया गया है।

४ उदयगिरी खंडगिरी पहाड़ी पर स्थित हाथी गुफा के विशाल शिलालेख की खोज करते हुए सन् १८२० में पादरी स्टर्लिङ्ग ने साबित कर

दिया कि यह कलिंग देश के राजा महाराजा खारवेल का है और उस मूर्ति व मंदिर का स्पष्ट उल्लेख है।

५ बरार के पास एक ग्राम मे जो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं और जो अब नागपुर के म्यूजियम में है, पुरातत्वज्ञों द्वारा ईसा से ६-७ शताब्दी पूर्व की मानी गई हैं।

६ राजस्थान में आबू के निकट मुण्डस्थल (मुंगथली) में जब दीक्षा लेने के बाद सातवें वर्ष में स्वयं महावीर स्वामी पधारे थे तब उनके बड़े भाई नन्दीवर्धन यहा वन्दनार्थ आये थे इसी स्मृति स्वरूप एक मंदिर वहां बनवाया गया था जिसका शिलालेख बतलाता है कि इसकी प्रतिष्ठा श्री केशी श्रमणाचार्य ने कराई थी।

७ ओसायां के मन्दिर की प्रतिष्ठा महावीर स्वामी के ७० वर्ष बाद आचार्य रत्नप्रभसूरी महाराज ने कराई थी।

८ अजमेर के पास बड़ली में प्राप्त शिलालेख में वीर सम्वत ८४ का लेख है।

९ हाल ही में मथुरा में कंकाली टीले की खुदाई काम में प्रतिमायें निकली हैं उनके लेखों से ज्ञात होता है कि ईस्वी सन् से २५० वर्ष से भी पूर्व की हैं।

१० बौद्धग्रन्थ महावग्गा १-२२-२३ में लिखा है कि महात्मा बुद्ध सर्वप्रथम राजगृह में गये तब वहां पर सुपार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर में उतरे। वहां पर सुपार्श्व को सुपेव में पाली भाषा में 'सुप्प तित्थ' लिखा हुआ है। इससे सिद्ध होता है कि भगवान महावीर के समय में राजगृह नगर में प्राचीन तीर्थंकरों का प्रतिमायें मन्दिरों में थी।

११ कुछ वर्ष पूर्व डा० प्राणनाथ ने प्रभासपट्टन के ताम्रपत्र से बताया है कि बेबीलोन के राजा नेबुचदनेजार ने गिरनार पर्वत के धणी भगवान नेमीनाथ के मन्दिर का जिर्णोद्धार कराया था।

किसी महापुरुष ने समाज या देश के लिए कोई उत्तम कार्य किया होवे तो समाज व देश उनकी यादगारी निमित्त चित्र व मूर्ति बना कर योग्य स्थल पर लगाते हैं जिससे हर कोई उनके दर्शन कर वन्दन, नमस्कार कर सके। इसी तरह कोई शूरवीर हो या दानवीर हो अथवा नामी व्यापारी हो तो संसार भर में इस तरह के लोगों की मूर्तियां आज प्रेरणादायक बन रही हैं। तब फिर धर्म में धर्मनायकों तीर्थंकरों की यादगारी के लिए उनकी मूर्ति बनावें हर रोज दर्शन-वंदन एवं पूजा करें और उत्तम प्रेरणा लेंवे तो फिर वह धर्म कार्य क्यों नहीं कहा जा सकता।

मूर्ति को जड़-पत्थर तरीके से गिनने वाले एवं हंसी उड़ाने वाले तथा अवगणना करने वाले को विचारना चाहिए कि उनके बुजुर्गों के फोटो व चित्र जड़ वस्तु हैं उनके ऊपर पूज्यभाव क्यों होता है? उन बुजुर्गों से भगवान तो अनन्त गुना विशेष पूज्य हैं तो उनकी मूर्ति या चित्र को मानना बुरा कैसे लग सकता है।

जिन स्थलों पर जहां २ तीर्थंकर देवों ने निर्वाण पद प्राप्त किया है उन उन स्थलों में श्री दयालु अरिहंतप्रभु की अनन्त योग साधना की शक्ति से जिन जिन अनन्त गुणरूप द्रव्यरूप पर्यायरूप पदार्थों में वासना व्याप्त हो गई है उस तरह के पवित्र परमाणु वाले जो जो स्थल हैं उन स्थलों पर जाने में ऊंची-ऊंची भावनायें उत्पन्न होकर ऊंचे-ऊंचे पवित्र गुणों की प्राप्ति होती है और अनन्त निर्जरा होती है। इस हेतु से श्री अरिहंत देव की प्रतिमायें पूज्य हैं।

तीर्थंकर भगवानों ने जिन-मूर्ति की मान्यता में धर्म गिना है। इतने पर भी जिन मूर्ति को न मानना एवं न मानने देना एक इस तरह की प्ररूपणा करना यह कितना ठीक है यह समझदार पाठक स्वयं जान सकते हैं।

इसके अलावा भी सूक्ष्म व सरल बुद्धि से विचार करें तो सही दृष्टि कोण प्राप्त किया जा सकता है।

जो व्यक्ति मूर्ति को जड मानकर और उससे कोई लाभ नहीं होता ऐसा मानते हैं, उनकी सेवा में बडी नम्रतापूर्वक कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं।

१ पतिव्रता स्त्री अपने पतिदेव के चित्र को देखकर अत्यन्त हर्ष पाती है या नहीं ?
२ परदेशवासी अपने स्वजन सम्बन्धी के हस्ताक्षर का पत्र प्राप्त कर स्वयं मिल रहे हों ऐसा सतोष प्राप्त करता है या नही ?
३ स्वयं के बुजुर्गों एवं दिवगत मित्रों के चित्र देखकर उनके गुण स्मरण होते हैं या नहीं ?
४ भूगोल के अभ्यासियों को नक्शे वगैरह देखने से इस लोक की अनेक वस्तुओं का ज्ञान होता है या नही ?
५ शास्त्रों सम्बन्धी अक्षरों की स्थापना से उनके पढ़ने वाले मनुष्यों को ज्ञान होता है या नहीं ?
६ श्री रामचन्द्रजी वनवास गये तब उनके भ्राता भरतजी ने राजा राम की चरणपादुकाओं की राम प्रमाण पूजा की थी या नही ?
७ सीताजी राम की अंगुली की मुद्रिका को आलिंगन कर लंका जैसे दूरस्थ प्रदेश में भी साक्षात राम से मिले ऐसा आनन्द अनुभव करती थी या नही ?
८ द्रोणाचार्य की प्रतिमा की स्थापना कर एकलव्य भील ने अर्जुन सदृश धनुष विद्या प्राप्त की या नही ?

ऊपर के थोड़े से दृष्टान्तों से जाहिर है कि निर्जीव वस्तु से सतोष अनुभव हो सकता है तो फिर साक्षात परमात्मा के स्वरूप का बोध कराने वाली मूर्ति पूर्णानन्द जैसे मोक्ष हेतु को क्यों नहीं प्राप्त करा सकती ?

वर्तमान समय में जो नोट (Currency) चलती है उसका एक हजार रुपये का नोट अपने पास होवे तो उसे एक हजार रुपये के बराबर

हम समझते हैं या नहीं ? या केवल एक कागज का टुकड़ा ही समझते हैं। उसको कागज समझकर कूड़े के साथ फेंक देने वाला मूर्ख शायद ही कोई मिले। अतः जैसे एक हजार रुपये की गैर हाजिरी में उतनी रकम का काम एक नोट से निकलता है, वैसे ही श्री जिनेश्वर देव की अनुपस्थिति में उनकी मूर्ति द्वारा साक्षात भगवान को पूजने का फल अवश्य ही मिल सकता है।

आज को शिक्षा पाये हुए एक ही प्रश्न पर जोर देते हैं कि मूर्ति जड़ है उसको पूजने से लाभ क्या ? इस पर हमने ऊपर विवेचन किया है पर विषय को और सरल बनाने के दृष्टिकोण से कुछ मनोवैज्ञानिक ढंग पर और विचार करना चाहते हैं।

संक्षेप में हम इस प्रश्न का उत्तर अंग्रेजी की एक कहावत से ही देंगे पर नई विचारधारा के व्यक्तियों में प्रभु पूजा के प्रति निष्ठा मजबूत हो इसलिए कुछ विशेष रूप में इस प्रश्न पर विचार करना उचित रहेगा।

(One picture is worth than Ten thousend words) यानी एक चित्र दस हजार शब्दों से अधिक ठीक है।

चित्र या प्रतिमा साधन है साध्य तक साधक को पहुंचाने के लिए। और यह भी ठीक ही है कि साधक की भावना के अनुरूप साधन मिलने पर ही वह साध्य तक पहुँचा जा सकता है। एक विलासिता से पूर्ण चित्र सन्मुख सामने रखकर आप त्याग और साधना के पथ पर बढ़ना चाहें तो यह सम्भव हो नहीं सकता। इतिहास में एक नहीं, अनेक उदाहरण ऐसे मिलेंगे जहां माता की गर्भावस्था की चर्या व साधना का उसके गर्भ पर असर पड़ा है। नवोदित बालक पर गर्भ में रहने पर भी जब माता के बाहर के संस्कारों का इतना असर अज्ञात अवस्था में पड़ सकता है तो ज्ञान का पुंज बनने वाले सामान्य मानव पर वीतराग के चित्र व, प्रतिमा का असर न हो यह कैसे माना जा सकता है। हां यह जरूरी है कि उस साधना में श्रद्धा निहित हो। बीमारी की अवस्था में

डाक्टर की दवा पर जो केवल जड़ पदार्थ है, और कुछ नहीं। पर वैज्ञानिक विज्ञान, एक स्वय रोगी डाक्टर भी किन्नी श्रद्धा रखता है और उस दवा को ही अपने लिए जीवनदायी समझता है। तो फिर प्रतिमा के प्रति श्रद्धा की बात मात्र ही यह क्या जड मानकर मात्र के मुख में उपयोगी मानने म मजी जाती है इसमें तो केवल अज्ञान व हठधर्मिता ही कारण भूत है। अपने पूर्वजों के चित्र के प्रति हरेक में विनय भावना जागती है या नहीं, कोई उनका तिरस्कार कर तो आत्मा को दुख होता है या नहीं, क्यों? क्योंकि उनके प्रति हमारा आत्मियता जागृत है और हमारे परमोपकारी भगवतों के प्रति हमारी वास्तविक आत्मियता जागृत नहीं हुई है। साधारण-सा कहावत है कि जो अपने माता पिता के प्रति कृतज्ञ नहीं वह दूसरों के विश्वास का पात्र बना रह सकता इसम ऐसा ही रहेगी। तो फिर अनन्त उपकारी जिनेश्वर देव के प्रति जो कृतज्ञ नहीं वह दुनियां मे दूसरे व्यक्तियों के प्रति कितना कृतज्ञ हो सकता है यह स्वयं म एक विचारणीय प्रश्न है। हमारा आशय कभी यह नहीं कि मन्दिर में जाकर अधिक समय लगाकर या अधिक दिखावे की धार्मिक क्रिया करने म ही एक व्यक्ति अपने लिए अधिक विश्वास प्राप्त कर सकता है।

मूर्ति पूजा के ढंग के विषय में मतभेद हो सकता है पर मूर्ति पूजा के सम्बन्ध म दो राय हो नहीं सकता। जिन धर्मों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे मूर्ति पूजा के विरोधी हैं उनमें भी मूर्ति पूजा प्रचलित है और आज कोई धर्म इसस बच कर रहा नहीं है।

मूर्ति पूजा के प्रथम विरोधी इस्लाम के प्रणेता मुहम्मद साहब हैं। सीधे रूप म मुसलमान अपने इष्ट का मूर्ति का मानने से इन्कार करते हैं पर वहां तो छोटी मूर्ति के बजाय सारी मस्जिद ही अदिव का स्वरूप बन गई है। मूर्ति को नहीं मानने वाले चुस्त मुसलमान भी मसजिद का ईंट ईंट को मूर्ति जैसी पवित्र नजर से देखते हैं और उसके रक्षण की खातिर स्वय के प्राण भी तुच्छ समझते हैं। मुसलमान लोग नमाज पढ़ते वक्त

पश्चिम में 'काबा' की तरफ ही मुंह क्यों रखते हैं ? क्या खुदा पश्चिम के सिवाय और किसी दिशा में नहीं है ? है तो फिर पश्चिम की तरफ ही मुख रखने की क्या जरूरत है ? काबा' का मार्ग पश्चिम की तरफ है इसलिए हाजी तो पश्चिम की तरफ नजर रखते हैं। मक्का मदीना हज करने जाते है वहा काले पत्थर को चुम्बन करते हैं। प्रदक्षिणा देते हैं और उस तरफ दृष्टि रखकर ही नमाज पढ़ते हैं इस यात्रा मे हजारों रुपया खर्च करते हैं। मक्का मदीना को ताम मानकर वहां जाते हैं। हर शुक्रवार को मस्जिद मे जाकर नमाज पढ़ते हैं। कुरान शरीफ को खुदा का वचन समझ कर सर पर चढाते हैं दरगाहों मे कब्रों पर पुष्पाहार चढ़ाते हैं। यह सब क्या है ?

ईसाई रोमन कैथोलिक ईशु की मूर्तिको मानते हैं। प्रोटेस्टेंट ईसा की यादगार रूप उनके शूली के निशान X को हमेशा अपने पास रखते हैं। ज्ञान की स्थापना रूप बाईबिल का आदर करते हैं। अपने पूज्य पादरियों का पादुका पास रखते हैं उनकी मूर्तियां, पुतला एव कबरों का आदर करते हैं। यह सब क्या ?

पारसी लोग अग्निदेव की पूजा करते हैं ? कबीरपंथी कबीर की गद्दी पर उनकी पादुकाओं को पूजते हैं ? दादूपंथी दादूवाणी की पूजा करते हैं छत्रियां बनाते हैं उनमें चरणपादुकायें पधराते हैं, यह क्या है ?

आर्य समाज जो वेदों की पूजा करता है उन वेदों में मूर्ति पूजा के कई पाठ हैं। आर्य समाज के प्रणेता स्वामी दयानन्द के चित्र आज उनके भक्तों के यहा जगह २ लगे मिलेंगे। उसके अलावा आर्यसमाजी अग्नि की पूजा करते हैं उसमें घी का होम करते हैं यह अग्नि क्या जड़ नहीं है ?

स्थानकवासी साधु भी स्वयं के पूज्यों की समाधियां, पादुकायें, मूर्तियां-चित्र आदि बना कर उपासना करते हैं उनके दर्शनों के लिए दूर २ से आते हैं और दर्शन कर स्वयं को कृत्य कृत्य मानते हैं।

इस प्रकार हरेक पंथ के अनुयायी अपनी २ पूज्य वस्तुओं के आकार को किसी न किसी तरह पूजते ही हैं इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति आकार पूजा सब कोई को मान्य है।

इन प्रमाणों के साथ इस सम्बन्ध की ऐतिहासिक परिस्थिति को भी विचार लें तो उचित ही होगा। देश में बाहर से आने वाले मूर्तिपूजक विरोधियों से मूर्ति पूजा के प्रति श्रद्धा में कोई फर्क नहीं आया पर [illegible] उन बाहर की संस्कृतियों ने भारत की धर्म संस्कृति के कमजोर तत्वों पर असर करना शुरू कर दिया। उस समय में जैन व हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे समर्थ व्यक्ति हुए जिन्होंने मूर्तिपूजा का जोरदार विरोध किया। धीरे धीरे यह विरोध बढ़ता भी गया।

हमें आगे इस ऐतिहासिक विवेचन में नहीं जाना है क्योंकि हमारा मन्तव्य सिर्फ प्रभु पूजा की आवश्यकता की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना है, पर यह तो निश्चित रूप से मानना ही पड़ेगा कि [illegible] के सम्बन्ध में पक्ष और विपक्ष होने के कारण जैन [illegible] हो गया बल्कि दिनों दिन जैन शासन का [illegible]। और दिन पर दिन हो रहा है। संख्या की दृष्टि में भी इस विरोध के कारण हम बहुत पीछे पड़गये हमारा ज्ञान क्षेत्र भी कमजोर [illegible] शासन में भी महाजन समाज की जो धाक व आवाज थी वह कमजोर हुई और सब से ज्यादा हमारा आर्थिक ह्रास भी हुआ। शासन देव इस कदर [illegible] दे जो मूर्ति पूजा के पक्ष में नहीं हैं वे चाहे मूर्ति पूजा [illegible] पर अपने को अपने पूर्वजों के आदि धर्म से [illegible] बनाने से तो बचाय। इस सम्बन्ध में विचार [illegible] संस्कृति और कला के प्रतीक जैन मंदिर और [illegible] गांव गांव में होते हुये भी कई जगह उनकी [illegible] इस विरोधी विचारधारा से जैन शासन और [illegible] कुमया होरही है। इतर जैनों में हमारी [illegible]

इन मंदिरा के रूप में हमारा सम्पत्त इतर लाखों के हाथ में जा रही है। हमें मान रखना है कि आज हमारा इतिहास इन्हीं मंदिरों व मूर्तियों के पीछे विद्यमान है। आज वस्तुपाल तजपाल महाराज खारवेल महाराज कुमारपाल महाराज सम्प्रति व इस तरह के हमारे इतिहास के जगमगाते सितारों को यदि यह मन्दिर और मूर्तियां नहीं होती तो कौन जानता। आज आबू राणकपुर शत्रुंजय गिरनार जैसे तीर्थ नहीं होते तो हमारा यह धर्म कितने दिन टिकता। गांव गांव में जैन धर्म की ध्वजा को फरकाते वाले मन्दिर न होते तो आज कौन अपने को महावीर का अनुयायी कहलाने का गर्व करता, हमारा तो सिर्फ इतना सा निवेदन तो मूर्ति को आधारभूत मानकर आराधना करने वालों से है कि वे समझें अपने इतिहास को। तथा अपने इन उपकारी जिनेश्वर देवों की की जाने वाली आशातना को रोके तथा अप्रमत्त हो तथा दूसरे बंधुओं से निवेदन है कि वे भावुकता मे इतने न बह कि अपने को धर्म में मजबूत बनाने के लिये अपने बुजुर्गों की बोयी हुई जड़ का ही काटने का उपदेश देकर अकारण ही शासन को हानि पहुंचाने में अदृश्य रूप में भी सहायक न बनें।

आज जैन शासन के हर अंग के साधु साध्वी श्रावक श्राविका सब ही तीर्थङ्करों की असीम अनुकम्पा से ही इस धर्म के राहगीर बने हैं थोड़े थोड़े से मार्ग की भिन्नता से चलन पर भी यह पूरी तरह ध्यान रखना चाहिये कि हमारा सबका लक्ष्य समान है। इसलिये अपने रास्ते को चाहे सब साफ सुथरा बनाने का प्रयास करें व उसे सजाने का प्रयास करें पर दूसरों के रास्ते को तोड़फोड़ कर कंकर डालने का कोई भी प्रयास न करें।

जहां तक हृदय उदार और दृष्टि विशाल न होवे वहां तक अपने धर्म के रहस्य को अच्छी तरह तथा सच्चे रूप में समझ नहीं सकते। गुणी अथवा गुणीजनों का आदर नहीं करने वाला व्यक्ति स्वयं में सद्गुणों का विकास कर नहीं सकते। संकुचितता मनुष्य की दृष्टि को कूप मंडूक जैसा बना देती है।

मदिर में मूल गम्भारे के चारो बाजा जो फरी यानी भमती हाली है उसम तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिये। इसका मूलसार यह है कि मैंने भव पयटन बहुत किया है हे नाथ इन तीन प्रदक्षिणा स मैं यह भावना भाता हू कि मुझे ज्ञान दर्शन व चारित्र तीनो की प्राप्ति हो ताकि मेरा यह भव भ्रमण मिटे।

मन्दिर मे जो घटे टकोरे लगे होते हैं उनमें भी गूढ भावना निहित है। जसे वादित्र घ_नाद आदि खुशी प्रसन्नता तथ मगलीक अवसरों क द्योतक हैं वैसे ही घंटा बजा कर यह खुशहाली व प्रसन्नता जाहिर की जाती है कि हे नाथ आज आपके दशन पूजन को पाकर मैं अति आनन्दित हुआ हू और उसकी खुशी जाहिर करने के लिये यह घटा बजा रहा हू।

प्रभु तीन लोक के नाता हैं तथ धणी हैं उनक सामने जाकर ससार सुख के लिये कुछ मागना करना ठीक उसी तरह है जैसे राजा क सामने पैसे दो पैसे की मागनी करना वहा तो अक्षय सुख की मागनी करनी है उस भावना व मागनी के पीछे ससार सुख तो मिलने वाला है ही एक किसान खेत से गेहूँ प्राप्त करने की भावना रखता है घास की नजी पर गेहूँ प्राप्त होने पर घास तो स्वयमेव ही प्राप्त होजाता है इसी प्रकार अक्षय सुख व ससार सुख का सम्बन्ध है। हमारी भावना यही होनी चाहिये कि हे अन त उपकारी भगवन् पूव भवो मे कुछ धम करणी की थी व आपके बताये माग पर चलकर दान शील तप व भावना रूपी धम की आराधना की थी इसस इस भव मे मानवदेह उत्तम कुल सुन्दर शरीर व आपकी भक्ति का अवसर मिला है। यदि इस भव म इन सब चीजों का सदुपयोग न कर सका तो फिर नाच की गतियो मे जाना पड़ेगा इसमे रोमाना आपका दशन पूजन कर आपकी साक्षी से यही भावना भाता हू कि आपके बताये मार्ग पर चलकर कर्मों की निर्जरा करता रहू। एव कोई काम यथाशक्य ऐसा न करू जिसम किसी की आत्मा को दुख हो तथा वह काय मेरा आत्मा के हित मन्तिकर हो।

हे भगवान ! हे परम कृपालु देव ! जन्म जरा और मरण आदि इस संसार के सब दुःखों को क्षय करने का मार्ग बताकर आपने महान उपकार किया है उस उपकार का किसी भी रूप में बदला चुकाने में मैं असमर्थ हूं। इतने पर भी हे प्रभो ! आप तो कोई भी भेंट लेने में सर्वथा निस्पृही ही हो था हे देव ! मैं मन वचन और काया की एकाग्रता से आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूं। आपके प्रति परम भक्ति और आप द्वारा बताये गए धर्म की उपासना मेरे हृदय में जीवन पर्यन्त अखंड जागृत रहे ऐसी मेरी भावना सफल हो।

मंदिर में शांत भाव से विनम्रता पूर्वक रहकर भक्ति भावना करनी चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अपनी भक्ति कहीं दूसरों को बाधा तो नहीं पहुंचा रही है जैसे भरत का ऐसी तरह से विवेक रखना चाहिये कि दूसरों को आड न पड़े। चैत्यवन्दन स्तवन आदि इतना जोर से न बोले कि दूसरों को विघ्न पड़े।

चैत्यवंदन करते वक्त की मुद्रा भी विचार करने में विचारणीय है बायाँ पाँव खड़ा कर दाहिना जमीन पर टिकाकर तथा दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के सन्मुख बैठना चाहिये जैसे एक सेवक बैठता है। प्रभु के आगे नहीं बैठना चाहिये क्योंकि उससे प्रभु के आसन से [illegible] बाहर होता है। दृष्टि सीधी प्रभुजी की तरफ रखना चाहिये। अब हम अष्ट प्रकारी पूजा के भावों के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

सर्व प्रथम प्रभुजी के ऊपर गत दिवस के चढ़े [illegible] आदि उतारने चाहिये यह ध्यान रहे कि हमारे शासन में उपयोग ही धर्म कहलाता है हमारी सब करणी ऐसी हो जिसमें जीवों की हिंसा को बचा सके व आशातना को टाला जा सके। पूजा के [illegible] पहनना आवश्यक है साथ ही मुखकोश मुंह व नाक पर बांधना चाहिये ताकि प्रभुजी के स्नात्र आदि पर मुंह की [illegible] युक्त श्वास आदि प्रतिमाजी पर न जा पावे कि हमारी

यही है कि साक्षात अरिहंत भगवत के सन्मुख हम भक्ति भावना भा रहे हैं। बासी पुष्प वगरह उतारने के बाद मोर पीछी प्रतिमाजी के ऊपर करनी चाहिये उसके बाद अष्टप्रकारी पूजा में प्रथम जल पूजा करनी चाहिये इस पक्षाल पूजा भी कहते हैं यह दूध से भी की जाती है। जल पूजा करते वक्त यह भावना होनी चाहिये कि हे भगवन अपनी आत्मा पर लगे हुये कर्म रूपी मैल को हटाने के लिये मैं आपकी जल पूजा करता हूँ कहा भी है। ज्ञान कलस भरा आत्मा समतारस भरपूर, श्री जिन ने न्हवरावता कर्मकरा चकचूर जल के पूजा के बाद प्रथम अंगलूनें से और बाद में खसकूची से भगवान पर रही हुई केसर चदन वक बादला आदि साफ करना चाहिये। खस कूची का उपयोग बहुत धीरे से करना चाहिये मूल में विनय भावना रखनी चाहिये। इसके बाद अगलूहन (वस्त्र) से बहुत धीरे प्रतिमाजी पर रहा हुआ जल पूछ लेना चाहिये। अब प्रभु की चन्दन पूजा जो अष्ट प्रकारी में दूसरी कहाती है करने की है। चन्दन केसर व आम पूजा नव अग पर की जाती है। भगवान सुभाषित ज्ञानादि गुणों से सुशोभित हैं जैसे हो हे भगवान मेरी आत्मा में भी सुभाषित होने वाले ये गुण आवें इसीलिये मैं यह आपकी चन्दन पूजा करता हूं अपने दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से बायी अंगुली से सब प्रथम प्रभु के दाहिने जामण पांव के अंगूठे पर केसर या चन्दन चढ़ाना चाहिये उसके बाद बायें पांव के अंगूठे पर। फिर दाहिने गौने पर बाद में बाये गोड़े पर उसके बाद दाहिने कधे पर फिर बाँये कधे पर केसर चढाना चाहिये इस तरह ये पंच आठ हुए अब मथा ये चार अग हुये। अब पाचवें मस्तक पर छठ्ठे भाल पर सातवें कठ पर आठवें हृदय पर तथा नवें नाभी पर केसर चढ़ाना चाहिये यही नव अग पूजा कहलाती है। केसर चढ़ाते वक्त इस तरह से केसर में अगुली डालना चाहिये की न तो नाखुन के केसर लगे और न प्रभुजी के नाखुन लगे। ये नव अग पूजा में भिन्न भिन्न अगों की भिन्ना के वक्त क्या क्या विचार करता यानी भावना भानी इसके लिये निम्न दोहे काका प्रचार हैं।

यह सब पीछे से आई हुई विधियां हैं पर ऐसा नहीं, पूजा चार प्रकार की बताते वक्त कहा है वन्दनवतीभाव–यानी नमस्कार स्तुति वगैरा से, पूजावतीभाव–यानी अभिषेक व पुष्प आदि से, सत्कारवती भावे–वर्ष याला अलंकार आदि से सन्मानवती भाव–भाव पूजा द्वारा––

यहां सत्कारवती भाव में इस पूजा का विधान है।

इसके बाद पुष्प पूजा करना चाहिये। पुष्प चढ़ाते वक्त यही भावना रखनी चाहिये कि हे भगवान। फूल के सदृश निर्विकार एवं सौम्य स्वभाव युक्त आपकी आत्मा है वैसी ही मेरी भी बने इसलिये मैं फूल पूजा कर यह भावना भाता हूं। महाराजा कुमारपाल के लिये प्रसिद्ध है कि पांच कौड़ी के फूलों से भावनापूर्वक पाद पूजा कर उन्होंने इतना अक्षय पुण्योपार्जित किया कि अगले भव में १८ देशों का अधिपति बना।

इस तरह जल चन्दन व पुष्प के साथ अंग पूजा समाप्त हुई। अब अग्रपूजा जो अष्टप्रकारी पूजा का ही अंग है करने का विधान है।

अग्रपूजा में धूप पूजा करते समय यही भावना रखने की है कि हे भगवत! आपने संसार में रही हुई सब प्रकार की दुर्गंध का त्याग कर दिया है वैसे ही इस सुगंधयुक्त धूप को लेकर मैं चाहता हूं कि मिथ्यात्व व कषाय रूपी मेरी रही हुई दुर्गंध का नाश हो।

फिर दीपक पूजा––यह भाव प्रकाश का प्रतीक है हे भगवत! आप केवल ज्ञानरूपी प्रकाश पाकर जगत का कल्याण कर रहे हैं वैसे ही यह दीपक पूजा कर मैं भावना भाता हूं कि केवल ज्ञानरूपी प्रकाश मेरी आत्मा में भी प्रकट होवे।

अब अक्षत पूजा––अखंड चावलों द्वारा प्रभु के आगे स्वस्तिक करना–स्वस्तिक में भी बहुत उच्च भावना भरी हुई है। स्वस्तिक के चार दिशाओं से चार गति (यानी देव मनुष्य तिर्यंच व नरक) को दूर कर, ऊपर की हुई तीन ढिगलियां में दर्शन ज्ञान चारित्र के द्वारा ऊपर कही हुई चन्द्राकार सिद्ध शिला तक पहुंचने की भावना निहित है।

साथीया करने के बाद नैवेद्य पूजा करनी चाहिए—शुद्ध मिष्टान्न चढ़ाना चाहिए और अनाहारी पद प्राप्त करने की भावना भानी चाहिए। हे भगवंत! भवोभव में करोड़ों मन खाद्य पदार्थ मैंने खाया है पर मेरी भूख मिटी ही नहीं। आज मैं यह नैवेद्य चढ़ाकर अपनी वासनाओं को कम करने एवं आप सदृश अनाहारी पद प्राप्त करने की भावना भाता हूं।

अन्त में अष्टप्रकारी पूजा में आठवीं फलपूजा करना है—साथाये के ऊपर बनाकार सिद्धशिला पर फल चढ़ाना चाहिए और ये विचारना चाहिए कि हे भगवन्त! आपकी अष्टप्रकारी पूजा कर यह फल मैंने चढ़ाया है केवल इसलिए कि इस फल के माध्यम से मुझे मोक्ष फल की प्राप्ति हो और मेरा स्थान सिद्धशिला पर मुझे प्राप्त हो।

इस प्रकार भावना से की गई पूजा सार्थक होती है और भव २ के बांधे हुए कर्मों की निर्जरा का कारण बनती है।

अष्ट प्रकारी पूजा के बाद आरती और मंगल दीवा किया जाता है। आरती प्रभु को प्राप्त केवल ज्ञान की महिमा का द्योतक है। आरती कर हम इस अनन्त ज्ञान का अभिनन्दन करते हैं। मंगल दीवा-सब के मंगल की कामना से किया जाता है। सबका मंगल होवे अभ्युदय होवे-जिससे सब सही मार्ग को और चल कर आपके बताये पथ पर अग्रसर होकर अपनी आत्मा का कल्याण कर जीवन को सफल बना सकें।

पूजा करते वक्त स्वयं के समर्पण की भावना होनी चाहिए—जैसे एक व्यक्ति के अन्य नौकरी करने पर पूरी तरह उसके हुक्म पर अपने को अर्पित कर दिया जाता है उसी तरह अनन्त उपकारी—तीन लोक के धणी जिनेश्वर देव की पूजा करते वक्त उनकी आज्ञा में पूरी तरह अपने को समर्पण करने की भावना होनी चाहिए। पूजा के लिए एवं दर्शन के लिए मन्दिर में खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। अक्षत आदि या फिर रोकड़ा कुछ भी मन्दिर में अवश्य चढ़ाना चाहिए। राजा-महाराजा के सम्मुख भी किसी तरह की भेंट सिवाय कोई जाता नहीं फिर ऐसे अनन्त

उपकारियों के दरबार में खाली हाथ जाना कैसे शोभ सकता है। शास्त्रकारों ने पूजा के लाभ में निम्न वस्तु बतलाई है।

भक्तिपूर्वक भगवान की मूर्ति को वन्दन नमस्कार करने से निम्न प्रकार लाभ होता है।

१ चैत्य वन्दन प्राप्ति भगवान की गुण स्तुति करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।
२ भगवान के दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है।
३ अरिहन्त एवं सिद्ध भगवान के गुण का स्मरण करने से मोहनी कर्म का क्षय होता है और सम्यग् दर्शन की प्राप्ति होती है।
४ प्रतिमा के सम्मुख भावपूजा में तल्लीन होने से एवं शुभ अध्यवसाय रखने से शुभ गति के आयुष्य का बंध पड़ता है।
५ अरिहन्त का मात्र नाम लेने से अशुभ नाम कर्म का क्षय होता है।
६ अरिहन्त का वन्दन भक्ति-पूर्वक करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता है।
७ चैत्य वन्दन में शक्ति का सदुपयोग करने से अन्तराय कर्म का क्षय होता है।

ऊपर के लेख में हमने प्रभु पूजा के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से संक्षेप में विचार किया है। यह विषय तो ऐसा है कि जिस पर काफी लिखा जा सकता है। हमारा तो इस छोटे से निबंध के लिखने में केवल मात्र एक ही दृष्टिकोण रहा है कि अनन्य उपकारी जिनेश्वर भगवंत का धर्म हमें मिल गया है तो उनके गुणों का कुछ आभास हमारे जीवन में भी आना चाहिए। यह तब ही आ सकता है जब हम में गुणानुराग जागृत हो और यह हो सकता है गुणी के प्रति श्रद्धा और विनय से।

परोपकारी भगवन्तों के प्रति हमारी श्रद्धा मजबूत हो यही मंगल कामना—